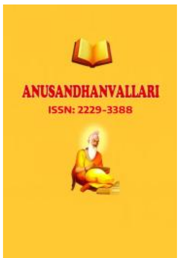

Anusandhanvallari

Vol 2024, No.1

May 2024

ISSN 2229-3388

स्वदेशी आंदोलन : आर्थिक प्रतिरोध और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदय

हिमांशु कुमार[1], डॉ. सत्य प्रकाश राय[2]

शोधार्थी[1] विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी आर अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

सहायक प्राध्यापक[2] विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बी आर अंबेडकर बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर, बिहार

शोध सारांश

स्वदेशी आंदोलन (1905–1911) भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का वह प्रथम संगठित जन–आंदोलन था जिसमें आर्थिक बहिष्कार को राजनीतिक हथियार बनाया गया तथा सांस्कृतिक आत्मगौरव को राष्ट्रीय चेतना का आधार बनाया गया। बंग–भंग के विरोध से प्रारम्भ होकर यह आंदोलन शीघ्र ही विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, स्वदेशी उद्योगों की स्थापना तथा भारतीय भाषा–साहित्य–कला–शिक्षा के पुनरूत्थान का व्यापक आंदोलन बन गया। स्वदेशी आंदोलन केवल ब्रिटिश माल का बहिष्कार नहीं था, अपितु एक नवीन सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की रचना थी जिसमें परम्परा और आधुनिकता का संश्लेषण हुआ। इसने अर्थ–नीति एवं सांस्कृतिक पुनर्जागरण दोनों की आधारशिला रखी।

यह शोध आलेख स्वदेशी आंदोलन के आर्थिक प्रतिरोध और सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के उदय एवं अंतर्सम्बन्धों को गहराई से समझने–समझाने का एक सजग प्रयास है। जो यह दर्शाता है कि किस प्रकार आर्थिक स्वावलम्बन की रणनीति और सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता की भावना ने मिलकर भारतीय राष्ट्रीय चेतना को एक नया आयाम प्रदान किया जो आगे चलकर स्वतंत्र भारत की नींव बना।

विशिष्ट शब्द

स्वदेशी आंदोलन, बंग–भंग, आर्थिक राष्ट्रवाद, स्वराज, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद

1. पृष्ठभूमि, बंग–भंग और स्वदेशी आंदोलन का आविर्भाव

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के इतिहास में 1905 का वर्ष एक निर्णायक मोड़ माना जाता है। इसी वर्ष लॉर्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा की, जिसे भारतीय समाज ने तुरंत एक खतरनाक राजनीतिक चाल के रूप में पहचान लिया। प्रशासनिक सुविधा का जो आवरण दिया गया था, वह किसी को भी भ्रम में नहीं डाल सका। सुमित सरकार ने बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि "बंग–भंग का उद्देश्य बंगाल की बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना को कुचलना और हिन्दू–मुस्लिम एकता को स्थायी रूप से तोड़ना था।" [1] कर्जन स्वयं यह मानते थे कि बंगाल भारतीय राष्ट्रवाद का हृदय–स्थल बन चुका है और यदि इसे दो टुकड़ों में बाँट दिया जाए तो बंगाली बुद्धिजीवी वर्ग की एकता हमेशा के लिए समाप्त हो जाएगी। परन्तु इतिहास ने इसका उल्टा परिणाम दिखाया।

बंगाल उस समय भारतीय राष्ट्रीय चेतना का सबसे जीवन्त केंद्र था। कलकत्ता में कांग्रेस के अनेक अधिवेशन हो चुके थे, सुरेंद्रनाथ बनर्जी और बिपिनचंद्र पाल जैसे नेता पहले से ही स्वराज की बात कर रहे थे। बंगाली मध्य वर्ग में शिक्षा का प्रसार तेजी से हो रहा था और समाचार–पत्रों की संख्या बढ़ती जा रही थी। बंगाल में ही सबसे पहले आधुनिक थिएटर, उपन्यास और पत्रकारिता विकसित हुई थी। ब्रिटिश अधिकारी इसे अच्छी तरह समझते थे कि यदि बंगाल की यह ऊर्जा कुंद न की गई तो समूचे भारत में स्वतंत्रता की लहर फैल जाएगी। इसलिए 19 जुलाई 1905 को बंग–भंग की आधिकारिक घोषणा की गई और 16 अक्टूबर 1905 से इसे लागू करने की तिथि तय की गई। इस घोषणा के साथ ही पूरे बंगाल में आक्रोश की लहर दौड़ गई। 7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउन हॉल में एक विशाल जन–सभा हुई जिसमें सुरेंद्रनाथ बनर्जी ने स्वदेशी और बहिष्कार का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ और यहीं से स्वदेशी आंदोलन का औपचारिक जन्म हुआ। कुछ ही दिनों में पूरे बंगाल में विदेशी कपड़ों की दुकानों के सामने पिकेटिंग शुरू हो गई, स्कूल–कॉलेज के विद्यार्थी सड़कों पर उतर आए और महिलाएँ घर–घर जाकर स्वदेशी का प्रचार करने लगीं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने इस आंदोलन को जन–जन तक पहुँचाने में अभूतपूर्व भूमिका निभाई। उन्होंने 16 अक्टूबर 1905 को राखी–बन्धन उत्सव का आयोजन किया जिसमें हिन्दू और मुसलमान एक–दूसरे की कलाई पर राखी बाँध रहे थे। यह दृश्य उस समय के लिए क्रांतिकारी था।

टैगोर ने बाद में लिखा, "यह उत्सव केवल प्रतीकात्मक नहीं था; यह बंगाल की एकता और स्वदेश–प्रेम की भावना का जीवन्त प्रदर्शन था।" [2] हजारों लोग सड़कों पर उतरे, हाथों में राखी लिए, गले में वन्दे मातरम् लिखी पट्टियाँ बाँधे। उस दिन कलकत्ता की सड़कों पर एक अद्भुत दृश्य था। हिन्दू और मुसलमान एक–दूसरे को भाई कहकर गले लगा रहे थे। इसी समय अरविन्द घोष कलकत्ता में सक्रिय हो चुके थे। वे पहले भारतीय सिविल सेवा में चयनित होकर भी नौकरी छोड़ चुके थे और अब पूर्ण रूप से क्रांतिकारी राजनीति में कूद पड़े थे। उनके नेतृत्व में *'वन्दे मातरम'* (1905) समाचार–पत्र (बिपिन चंद्र पाल द्वारा स्थापित) और *'युगान्तर'* (1906) जैसे क्रांतिकारी पत्र निकलने लगे। अरविन्द ने स्पष्ट कहा कि अब केवल प्रार्थना–पत्र देने से काम नहीं चलेगा; अब ब्रिटिश शासन को आर्थिक रूप से कमजोर करना होगा। इसी सोच से स्वदेशी और बहिष्कार की दोहरी रणनीति अपनाई गई। स्वदेशी शब्द पहले भी प्रयोग होता रहा था, परन्तु 1905 के बाद इसका अर्थ पूरी तरह बदल गया। अब यह केवल स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग नहीं, बल्कि विदेशी वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार और स्वदेशी उद्योगों की स्थापना का आंदोलन बन गया। दादाभाई नौरोजी और रोमेश चंद्र दत्त ने पहले ही *धन–निष्कासन* का सिद्धांत प्रतिपादित कर दिया था। अब जनता ने इसे व्यवहार में उतारना शुरू कर दिया। गली–मोहल्लों में विदेशी कपड़ों की होलिकाएँ जलाई जाने लगीं, दुकानों पर ताले लटकाए गए और जो व्यापारी विदेशी माल बेचते पाए गए उनका सामाजिक बहिष्कार होने लगा। यह आंदोलन केवल बंगाल तक सीमित नहीं रहा। कुछ ही महीनों में यह पूरे देश में फैल गया। बॉम्बे में बाल गंगाधर तिलक ने इसे महाराष्ट्र तक पहुँचाया, मद्रास में वी.ओ. चिदंबरम पिल्लै ने स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कंपनी शुरू की, पंजाब में लाला लाजपत राय और अजीत सिंह सक्रिय हो गए। दिसंबर 1906 में कलकत्ता में हुए कांग्रेस अधिवेशन में स्वदेशी को राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार कर लिया गया। दादाभाई नौरोजी ने अध्यक्षीय भाषण में पहली बार खुलकर *'स्वराज'* शब्द का प्रयोग किया। इस प्रकार बंग–भंग के विरोध से शुरू हुआ आंदोलन कुछ ही महीनों में आर्थिक प्रतिरोध और सांस्कृतिक पुनर्जागरण का अभूतपूर्व संयोजन बन गया।

यह भारतीय इतिहास का वह पहला अवसर था जब आम जनता सड़कों पर उतरी और उसने महसूस किया कि ब्रिटिश साम्राज्य को पराजित किया जा सकता है वह भी बंदूक के बल पर नहीं, बल्कि चरखे और बहिष्कार की ताकत से। यही स्वदेशी आंदोलन की सबसे बड़ी देन थी कि उसने भारतीयों को अपनी शक्ति का पहली बार एहसास कराया।

2. आन्दोलन की सीमाएँ, दमन और दीर्घकालिक विरासत

1908 तक आकर स्वदेशी आंदोलन अपने चरम पर पहुँच चुका था, लेकिन इसी समय उसकी गति भी थमने लगी। ब्रिटिश सरकार ने इसे कुचलने के लिए कठोर कदम उठाए। गिरफ्तारियाँ, निर्वासन और समाचार–पत्रों पर प्रतिबंध की बाढ़ आ गई। अरविन्द घोष को "अलीपुर बम केस" में गिरफ्तार किया गया, बाल गंगाधर तिलक को *"केसरी"* में लिखे लेखों के लिए छह वर्ष की सजा सुनाई गई और मांडले जेल भेज दिया गया। बिपिनचंद्र पाल और लाला लाजपत राय को भी जेल की सलाखों के पीछे डाल दिया गया। सरकार ने "सेडिशन एक्ट" और "प्रेस एक्ट" जैसे कानूनों का सहारा लिया, जिनके तहत सैकड़ों क्रांतिकारियों को दंडित किया गया। कलकत्ता में मार्शल लॉ जैसी स्थिति बन गई, जहाँ सभाएँ और जुलूस प्रतिबंधित कर दिए गए। ब्रिटिश अधिकारियों ने "डिवाइड एंड रूल" की नीति को और तेज किया, मुस्लिम लीग की स्थापना को बढ़ावा दिया और हिन्दू–मुस्लिम विभाजन को भड़काया। परिणामस्वरूप, 1909 तक आंदोलन की तीव्रता कम हो गई और 1911 में बंग–भंग को रद्द कर दिया गया, जिसे सरकार ने अपनी विजय बताया, लेकिन वास्तव में यह जन–दबाव की जीत थी। दमन के अलावा आंदोलन की अपनी आंतरिक सीमाएँ भी थीं। मुख्य रूप से यह शहरी मध्य वर्ग तक ही सीमित रहा। ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों और मजदूरों की भागीदारी उतनी व्यापक नहीं हो सकी जितनी अपेक्षित थी। बंगाल के ग्रामीण इलाकों में कुछ हद तक तो फैला, लेकिन पूरे देश में यह उच्च शिक्षित वर्ग का आंदोलन बना रहा। मुस्लिम समुदाय का बड़ा हिस्सा इससे अलग रहा। सरकारी प्रचार ने मुसलमानों को यह समझाने की कोशिश की कि बंग–भंग उनके हित में है और स्वदेशी हिन्दू–प्रधान आंदोलन है। हालांकि राखी–बन्धन जैसे प्रयास हुए, लेकिन गहरा विभाजन हो गया। आर्थिक स्तर पर भी सीमाएँ थीं स्वदेशी उद्योग स्थापित तो हुए, लेकिन वे ब्रिटिश पूँजी और तकनीक से मुकाबला नहीं कर सके। कई कारखाने कुछ वर्षों में बंद हो गए। क्रांतिकारी गतिविधियाँ बढ़ीं, लेकिन वे संगठित नहीं थीं और दमन का शिकार बनीं। कुल मिलाकर, आंदोलन की सीमाएँ उसकी तात्कालिक असफलता का कारण बनीं, लेकिन ये सबक आगे के संघर्षों के लिए मूल्यवान साबित हुए। बिपिन चंद्रा और उनके सहयोगियों ने ठीक ही लिखा है कि "स्वदेशी आंदोलन वह पहला अवसर था जब कांग्रेस ने स्पष्ट रूप से स्वराज को अपना लक्ष्य घोषित किया।" [3] यह उद्घोषणा आंदोलन की सबसे बड़ी

दीर्घकालिक विरासत थी।

इससे पहले कांग्रेस की माँगें सीमित सुधारों तक थीं, लेकिन अब स्वराज एक राष्ट्रीय लक्ष्य बन गया। यह विचार गांधीजी के आने पर और मजबूत हुआ, जिन्होंने असहयोग और सविनय अवज्ञा में इसे अपनाया। आंदोलन ने भारतीय राजनीति में उग्रवाद और उदारवाद का विभाजन स्पष्ट किया, जो सूरत कांग्रेस के विभाजन में परिलक्षित हुआ। लेकिन इसी से कांग्रेस मजबूत हुई और जन–संपर्क बढ़ा। दीर्घकालिक रूप से, स्वदेशी ने भारतीय अर्थव्यवस्था की नींव रखी। धन–निष्कासन के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाकर इसने आर्थिक राष्ट्रवाद को जन्म दिया, जो बाद में नेहरू की योजना–आधारित अर्थनीति में दिखा। ग्राम–स्वराज की अवधारणा टैगोर से लेकर गांधी तक पहुँची और आज भी यह आत्मनिर्भर भारत की नीतियों में झलकती है। सांस्कृतिक स्तर पर, यह आंदोलन भारतीय पहचान की पुनर्खोज था। कला, साहित्य और शिक्षा में जो पुनरुत्थान हुआ, वह आजादी के बाद की सांस्कृतिक नीतियों का आधार बना। उदाहरण के लिए, बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट ने राष्ट्रीय कला आंदोलन को जन्म दिया, जो जामिया मिलिया और शांतिनिकेतन जैसे संस्थानों में जारी रहा। राष्ट्रीय शिक्षा का विचार आजादी के बाद की शिक्षा नीति में शामिल हुआ, जहाँ भारतीय मूल्यों पर जोर दिया गया। आंदोलन की विरासत सामाजिक न्याय में भी दिखती है। महिलाओं की सक्रियता ने स्त्री–मुक्ति आंदोलन को गति दी, जो बाद में सरोजिनी नायडू और कमला नेहरू जैसी नेत्रियों में परिलक्षित हुई। मुस्लिम भागीदारी की कमी ने आगे चलकर हिन्दू–मुस्लिम एकता की जरूरत पर बल दिया, हालांकि यह पूरी तरह सफल नहीं हो सका।

क्रांतिकारी धारा ने भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद जैसे नेताओं को प्रेरित किया, जिन्होंने स्वदेशी की भावना को आगे बढ़ाया। कुल मिलाकर, स्वदेशी आंदोलन की सीमाएँ और दमन ने इसे तात्कालिक रूप से कमजोर किया, लेकिन उसकी विरासत ने भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को मजबूत बनाया। यह एक पुल था दृ औपनिवेशिक दासता से स्वतंत्र राष्ट्र की ओर। आज भी, जब हम सांस्कृतिक गौरव और आर्थिक आत्मनिर्भरता की बात करते हैं, स्वदेशी की गूँज सुनाई देती है। यह आंदोलन हमें सिखाता है कि असफलताएँ भी विरासत बन सकती हैं, यदि उनमें सकारात्मक सबक छिपे हों।

3. आर्थिक प्रतिरोध की रणनीतियाँ, स्वदेशी उद्योग और जन–भागीदारी

स्वदेशी आंदोलन की सबसे बड़ी खासियत यह थी कि यह केवल नारों और सभाओं तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने ठोस आर्थिक हथियारों का इस्तेमाल किया। नेताओं ने बहुत जल्दी समझ लिया था कि ब्रिटिश राज को केवल प्रार्थना–पत्रों से नहीं, उसकी जेब पर चोट मारकर ही कमज़ोर किया जा सकता है। रोमेश चंद्र दत्त ने तो बहुत पहले ही लिख दिया था कि "भारत को कच्चे माल का उत्पादक और तैयार माल का बाजार बना दिया गया था।" [4] अब आम जनता ने इस सिद्धान्त को व्यवहार में उतारना शुरू कर दिया। र्थिक प्रतिरोध की रणनीति दो स्तरों पर चलाई गई नकारात्मक और सकारात्मक। नकारात्मक का मतलब था विदेशी माल, खासकर मैनचेस्टर और लंकाशायर के कपड़ों का पूर्ण बहिष्कार। सकारात्मक का मतलब था स्वदेशी उद्योगों को खड़ा करना और उन्हें जन–जन तक पहुँचाना। बंगाल में विदेशी कपड़े की होलियाँ जलने लगीं। गाँव–गाँव, मोहल्ले–मोहल्ले में युवक और महिलाएँ विदेशी कपड़े इकट्ठा करतीं और सार्वजनिक रूप से जलाती थीं। दुकानों के बाहर पिकेटिंग होती थी, जो व्यापारी विदेशी माल बेचते पकड़े जाते, उनका सामाजिक बहिष्कार होता था। सुमित सरकार के अनुसार उन्नीस सौ पाँच से उन्नीस सौ आठ के बीच बंगाल में विदेशी कपड़े का आयात लगभग पच्चीस प्रतिशत कम हो गया था। [5] यह आँकड़ा अपने आप में बताता है कि जनता ने बहिष्कार को कितनी गम्भीरता से लिया। सकारात्मक पक्ष पर भी कम ज़ोर नहीं था। कलकत्ता में *'स्वदेश बन्धव समिति'* बनी, 'नेशनल फण्ड' बनाया गया, और 'स्वदेशी भण्डार' की दुकानें खोली गईं। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने स्वयं एक दुकान खोली और लोगों से अपील की कि केवल स्वदेशी ही खरीदें। बंगाल में दर्जनों छोटी–बड़ी कपड़ा मिलें शुरू हुईं; बंग–लक्ष्मी मिल, अचलपुर मिल, मोहनदास करमचन्द मिल आदि। साबुन, माचिस, नमक, चीनी, तिल्ली का तेल और रोज़मर्रा की हर चीज़ के स्वदेशी विकल्प तैयार किए गए। पंजाब में लाला लाजपत राय ने *पंजाब नेशनल बैंक* (1895) और लक्ष्मी बीमा कंपनी की नींव रखी। मद्रास में वी.ओ. चिदंबरम पिल्लै ने स्वदेशी स्टीम नेविगेशन कंपनी शुरू की, जिसने ब्रिटिश जहाज़ों को सीधी टक्कर दी। महिलाओं की भूमिका को भी कभी भुलाया नहीं जा सकता। कुमारी जयवर्धने ने ठीक ही लिखा है कि "स्वदेशी आन्दोलन में महिलाएँ केवल सहभागी नहीं, अपितु अगुआ थीं।" [6] सरला देवी चौधरानी ने *'भारत स्त्री महामण्डल'* बनाया। स्वर्णकुमारी देवी, कुमुदिनी मित्र, हिरण्मयी देवी जैसी महिलाएँ घर–घर जाकर चरखा चलाना सिखाती थीं। साड़ी पहने महिलाएँ सड़कों पर निकलतीं और विदेशी कपड़े जलाती थीं। कई घरों में तो विदेशी कपड़ों की सार्वजनिक होली जलाई गई। यह दृश्य उस ज़माने में क्रांतिकारी था जब अधिकांश महिलाएँ पर्दे में रहती थीं। विद्यार्थी भी पूरी ताकत से लग गए।

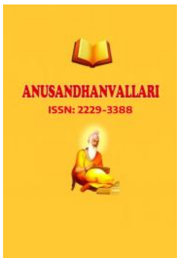

स्कूल–कॉलेज छोड़कर हज़ारों नौजवान स्वदेशी प्रचार में जुट गए।
सरकार ने सैकड़ों विद्यार्थियों को निकाला, कई कॉलेजों में *'कार्लाइल सर्कुलर'* लागू किया गया, जिसके तहत स्वदेशी गतिविधियों में भाग लेने वाले विद्यार्थियों को सरकारी नौकरी से वंचित करने की धमकी दी गई। पर इससे आंदोलन और तेज़ हुआ। आर्थिक स्वावलम्बन की यह भावना केवल शहरों तक नहीं रुकी। गाँवों में भी चरखा और हथकरघा को पुनर्जीवित करने की कोशिश हुई। भले ही बड़े पैमाने पर सफलता न मिली हो, पर यही विचार बाद में गांधीजी के हाथों खादी आंदोलन का रूप लेगा। पार्थ चटर्जी ने बहुत गहराई से समझाया है कि भारतीय राष्ट्रवाद ने पश्चिम से भौतिक क्षेत्र में हार मान ली थी, पर आध्यात्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में उसने चुनौती स्वीकार की। उन्होंने लिखा, "राष्ट्रवाद का आन्तरिक क्षेत्र (आध्यात्मिक क्षेत्र) हमें स्वयं गढ़ना होगा, जहाँ हम पश्चिम से श्रेष्ठ सिद्ध होंगे।" [7] स्वदेशी आंदोलन में आर्थिक प्रतिरोध और सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता का यही सुन्दर मेल दिखाई देता है। इस प्रकार आर्थिक प्रतिरोध कोई अलग–थलग घटना नहीं था। यह सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का ही एक अभिन्न अंग था। कपड़ा जलाना केवल आर्थिक चोट नहीं था, यह विदेशी सभ्यता की नकल को ठुकराने का प्रतीक था।
चरखा अपनाना केवल रोज़गार नहीं था, यह अपनी परम्परा को पुनर्जीवित करने का संकल्प था। जनता ने पहली बार महसूस किया कि स्वराज दूर की कौड़ी नहीं है वह हमारे घर के चरखे में, हमारे हाथों से बने कपड़े में, हमारे अपने कारखानों में बसता है। यही स्वदेशी आंदोलन की सबसे बड़ी जीत थी।

4. सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदय और स्वदेशी समाज की कल्पना

स्वदेशी आंदोलन ने भारतीय इतिहास में पहली बार सांस्कृतिक तत्वों को राजनीतिक संघर्ष का अविभाज्य हिस्सा बनाया। यह केवल आर्थिक बहिष्कार का मामला नहीं था, बल्कि एक गहन सांस्कृतिक पुनरुत्थान का आह्वान था, जहाँ भारतीय परम्पराएँ आधुनिक राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया से जुड़ गईं। नेताओं और बुद्धिजीवियों ने महसूस किया कि ब्रिटिश शासन केवल शरीर पर नहीं, बल्कि आत्मा पर भी हमला कर रहा है। इसलिए सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का उदय हुआ, जो पश्चिमी भौतिकवाद के मुकाबले भारतीय आध्यात्मिकता और सांस्कृतिक विरासत पर टिका था। इसने स्वदेशी समाज की एक नई कल्पना प्रस्तुत की जहाँ समाज आर्थिक स्वतंत्रता सांस्कृतिक आत्म–सम्मान से जुड़ी हो।
साहित्य और संगीत इस सांस्कृतिक जागरण के प्रमुख माध्यम बने। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने दर्जनों गीत रचे, जो स्वदेशी की भावना से ओतप्रोत थे। उनके *"एकला चलो रे"* जैसे गीतों ने लोगों को अकेले भी संघर्ष करने की प्रेरणा दी, जबकि "ओ आमार देशेर माटी" ने मातृभूमि से गहरा लगाव व्यक्त किया। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का उपन्यास *"आनन्दमठ"* पहले से ही लोकप्रिय था, लेकिन स्वदेशी काल में उसका "वन्दे मातरम" गीत राष्ट्रीय मंत्र बन गया। युवक सड़कों पर इसे गाते हुए गिरफ्तार हो जाते थे। यह साहित्य केवल मनोरंजन नहीं था, बल्कि सांस्कृतिक प्रतिरोध का हथियार था, जो लोगों को अपनी जड़ों से जोड़ता था। इसी तरह, बंगाली नाटकों और कविताओं में स्वदेशी थीम उभरी, जो ब्रिटिश संस्कृति की नकल को चुनौती देती थीं। चित्रकला के क्षेत्र में भी क्रांति आई। अभनीन्द्रनाथ टैगोर ने 1905 में *"भारत माता"* का वह ऐतिहासिक चित्र बनाया, जिसमें मातृभूमि को एक चार–भुजाओं वाली देवी के रूप में चित्रित किया गया था जिसमे एक हाथ में पुस्तक (ज्ञान), दूसरे में अन्न (समृद्धि), तीसरे में वस्त्र (स्वदेशी उद्योग) और चौथे में आशीर्वाद की मुद्रा। यह चित्र पूरे देश में फैल गया और स्वदेशी आंदोलन का प्रतीक बन गया। परथा मित्तर ने इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है कि "यह चित्र केवल कला – कृति नहीं, अपितु स्वदेशी राष्ट्रवाद का दृश्य मंत्र बन गया।" [8] इसने बंगाल स्कूल ऑफ आर्ट की नींव रखी, जहाँ नन्दलाल बोस, असित कुमार हलदर और अन्य कलाकारों ने भारतीय शैली को पुनर्जीवित किया। जापानी कलाकार ओकाकुरा काकुजो के प्रभाव से यह स्कूल भारतीय चित्रकला को पश्चिमी प्रभाव से मुक्त करने में सफल रहा। कला अब केवल सजावट नहीं थी, बल्कि राष्ट्रवाद की दृश्य भाषा बन गई थी। शिक्षा के क्षेत्र में स्वदेशी आंदोलन ने सबसे स्थायी योगदान दिया। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली को औपनिवेशिक दासता का माध्यम मानते हुए, नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा की अवधारणा प्रस्तुत की। 1906 में सत्येन्द्रनाथ टैगोर के नेतृत्व में राष्ट्रीय शिक्षा परिषद की स्थापना हुई, जिसके तहत जादवपुर में बंगाल नेशनल कॉलेज खोला गया। अरविन्द घोष इसके पहले प्राचार्य बने और उन्होंने शिक्षा को सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का आधार बनाया। घोष ने जोर दिया कि शिक्षा केवल नौकरी पाने का साधन नहीं होनी चाहिए। उन्होंने लिखा, "राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य केवल डिग्री प्राप्त करना नहीं, अपितु चरित्र–निर्माण और स्वदेश–प्रेम की भावना जगाना था।" [9] इस कॉलेज में संस्कृत, भारतीय इतिहास, दर्शन और विज्ञान को भारतीय दृष्टिकोण से पढ़ाया जाता था। पूरे देश में सैकड़ों राष्ट्रीय विद्यालय खोले गए, जहाँ छात्रों को पश्चिमी पाठ्यक्रम के बजाय अपनी संस्कृति से जोड़ा जाता था। यह शिक्षा आंदोलन

स्वदेशी समाज की कल्पना का केंद्र था।
एक ऐसा समाज जहाँ नई पीढ़ी अपनी जड़ों से जुड़ी हो और आधुनिक चुनौतियों का सामना करने के लिए तैयार हो। स्वदेशी समाज की कल्पना टैगोर की रचनाओं में सबसे स्पष्ट रूप से उभरती है। उनकी पुस्तक "स्वदेशी समाज" में उन्होंने एक विकेन्द्रीकृत, ग्राम–आधारित समाज की परिकल्पना की, जहाँ शहरों की बजाय गाँव विकास का केंद्र हों। टैगोर का मानना था कि सच्ची स्वतंत्रता केवल आर्थिक नहीं, बल्कि सांस्कृतिक स्तर पर आनी चाहिए। उन्होंने ग्रामीण पुनर्निर्माण के प्रयोग किए, जैसे शांतिनिकेतन में कला और शिक्षा का मेल। यह कल्पना परम्परा और आधुनिकता के संश्लेषण पर टिकी थी प्राचीन भारतीय मूल्यों को आधुनिक विज्ञान से जोड़ना। अन्य विचारकों जैसे विवेकानन्द के प्रभाव से स्वदेशी काल में योग, ध्यान और आध्यात्मिकता को राष्ट्रवाद से जोड़ा गया।
मुस्लिम बुद्धिजीवी भी इसमें शामिल हुए, जैसे मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अपनी पत्रिका *"अल–हिलाल"* में स्वदेशी का समर्थन किया। इस सांस्कृतिक राष्ट्रवाद ने धार्मिक और सामाजिक सुधारों को भी गति दी। हिन्दू–मुस्लिम एकता को बढ़ावा देने के लिए त्योहारों को साझा रूप दिया गया, जैसे राखी–बन्धन। महिलाओं की भागीदारी ने सांस्कृतिक स्तर पर लिंग समानता की बहस छेड़ी। हालांकि आंदोलन में कुछ सीमाएँ थीं, जैसे उच्च वर्ग तक सीमित रहना, लेकिन इसने सांस्कृतिक आत्मनिर्भरता की एक मजबूत नींव रखी। आगे चलकर यह गांधीजी के सत्याग्रह और सांस्कृतिक प्रतिरोध में परिलक्षित हुई। स्वदेशी समाज की कल्पना आज भी प्रासंगिक है, जहाँ वैश्वीकरण के दौर में अपनी सांस्कृतिक पहचान को बनाए रखना चुनौती बना हुआ है। इस प्रकार, स्वदेशी आंदोलन ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद को न केवल जन्म दिया, बल्कि उसे एक स्थायी विरासत बना दिया।

5. निष्कर्ष

निष्कर्षतः स्वदेशी आंदोलन भारतीय इतिहास की वह अनमोल कड़ी सिद्ध हुआ जिसने स्वतंत्रता संग्राम को मात्र राजनीतिक माँग से ऊपर उठाकर एक समग्र सभ्यतामूलक संघर्ष बना दिया। यह आंदोलन सिद्ध करता है कि जब आर्थिक स्वावलम्बन और सांस्कृतिक आत्म–सम्मान एक साथ चलते हैं, तब राष्ट्रवाद की शक्ति अजेय हो जाती है। स्वदेशी ने यह स्थापित कर दिया कि औपनिवेशिक शासन को पराजित करने का सबसे प्रभावी तरीका उसकी आर्थिक नसों पर चोट करना और साथ ही अपनी सांस्कृतिक आत्मा को जीवित रखना है। यही द्वंद्वात्मक रणनीति आगे चलकर गांधी युग में चरखा, खादी, हरिजन–उद्धार और ग्राम–स्वराज के रूप में परिपक्व हुई। नेहरू की समाजवादी अर्थ–व्यवस्था और योजना–आयोग की नींव में भी स्वदेशी का आर्थिक राष्ट्रवाद स्पष्ट दिखाई देता है। इसी तरह टैगोर, अरविन्द और विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित सांस्कृतिक पुनर्जागरण ने स्वतंत्र भारत की शिक्षा–नीति, कला–नीति और पहचान–निर्माण को दिशा दी। आज जब हम "आत्मनिर्भर भारत" की बात करते हैं, तो अनजाने में उसी स्वदेशी की गूँज सुनाई देती है। यह आंदोलन हमें याद दिलाता है कि सच्ची आज़ादी केवल सत्ता–हस्तांतरण नहीं होती; वह तब पूरी होती है जब हम अपनी अर्थ–व्यवस्था, अपनी संस्कृति और अपनी सोच पर पूरा अधिकार रखते हैं। स्वदेशी ने वह बीज बोया था जिसका वृक्ष आज भी छाया दे रहा है। यही इसकी सबसे बड़ी और अमर विरासत है।

संदर्भ

[1] सरकार, सुमित, मॉडर्न इंडिया 1885–1947, मैकमिलन, 1983, पृष्ठ संख्या – 114
[2] टैगोर, रवीन्द्रनाथ, स्वदेशी समाज, विश्वभारती ग्रंथन विभाग, 1911/2008, पृष्ठ संख्या – 11–12
[3] दत्त, रोमेश चंद्र, द इकोनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया अन्डर अर्ली ब्रिटिश रूल (वॉल्यूम 1), रूटलेज एंड केगन पॉल, 1950, पृष्ठ संख्या – 417
[4] सरकार, सुमित, द स्वदेशी मूवमेंट इन बंगाल 1903–1908, परमानेंट ब्लैक, 2010, पृष्ठ संख्या – 278–279
[5] जयवर्धने, कुमारी, फेमिनिज़्म ऐंड नेशनलिज़्म इन द थर्ड वर्ल्ड, ज़ेड बुक्स, 1986, पृष्ठ संख्या – 83
[6] चटर्जी, पार्थ, नेशनलिस्ट थॉट ऐंड द कॉलोनियल वर्ल्ड, ज़ेड बुक्स, 1986, पृष्ठ संख्या – 44
[7] मित्तर, पार्था, आर्ट ऐंड नेशनलिज़्म इन कोलोनियल इंडिया 1850–1922, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1994, पृष्ठ संख्या – 279
[8] घोष, अरविन्द, स्पीचेज़ ऐंड राइटिंग्स, श्री अरविन्द आश्रम, 2002, पृष्ठ संख्या – पेज 901
[9] चंद्रा, बिपन एवं अन्य, इंडियाज़ स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस, पेंगुइन बुक्स, 1989, पृष्ठ संख्या – पेज 136